याद आता है जगम्मनपुर

(गीत-संग्रह)

ओमप्रकाश चतुर्वेदी 'पराग'

याद आता है जगम्मनपुर

(ओमप्रकाश चतुर्वेदी 'पराग' के 52 गीत)

याद आता है जगम्मनपुर

(गीत-संग्रह)

ओमप्रकाश चतुर्वेदी 'पराग'

असीम प्रकाशन
गाज़ियाबाद

प्रथम संस्करण - 2011

याद आता है जगम्मनपुर (गीत-संग्रह)

सर्जक	:	ओमप्रकाश चतुर्वेदी 'पराग'
सर्वाधिकार सुरक्षित	:	ओमप्रकाश चतुर्वेदी 'पराग'
प्रकाशक	:	असीम प्रकाशन गाजियाबाद
मूल्य	:	एक सौ रुपये
शब्द-संयोजन	:	**अंकुर ग्राफिक्स, गाजियाबाद** मो. 9899547692
आवरण	:	**जगम्मनपुर के कुछ स्थल**
मुद्रण-व्यवस्था	:	Printech The Press, गाजियाबाद 0120-4560628

YAAD AATA HAI JAGAMMANPUR (POETRY) :
by Omprakash Chaturvedi 'Parag

समर्पण

जन्मभूमि जगम्मनपुर

को

मैं जहाँ की धूलि में घुटनों चला
खेत, घर, चौपाल पर खेला, पला
प्राण में जिसने बुंदेली आन दी
ज्ञान में दी काव्य की अनुपम कला

मेरा गाँव और मेरे गीत

मेरे गीत-संग्रह 'अनकहा ही रह गया' में एक कविता छपी थी, 'जगम्मनपुर', जो मेरी जन्मभूमि गाँव जगम्मनपुर पर आधारित थी। पाठकों ने अपने गाँव के प्रति मेरी भावनाओं की बहुत सराहना की। 'अनकहा ही रह गया' का लोकार्पण करते हुए अपने वक्तव्य में सुविख्यात कवि भारतभूषण ने कहा कि यह कविता पढ़ कर मैं अत्यन्त भावुक हो उठा क्योंकि मैंने भी कभी अपनी जन्मभूमि मेरठ पर एक गीत का सृजन किया था। 'अनकहा ही रह गया' की कुछ प्रतियाँ जगम्मनपुर, जालौन तथा उरई भी पहुँचीं और वहाँ के साहित्यकारों तथा विज्ञ पाठकों ने भी इस कविता को लेकर प्रशंसात्मक प्रतिक्रिया व्यक्त की।

कुछ माह पूर्व मेरा पुत्र राकेश तथा पुत्रवधू डा. विशाखा जगम्मनपुर गये और मेरे अनेक मित्रों-परिचितों से उनकी भेंट हुई। उन्होंने मुझे बताया कि गाँव के निवासी आपको बहुत याद करते हैं। आपके साथ खेले-पढ़े कुछ साथियों ने बहुत भावुक होकर कहा कि लगता है मुन्ना भैया (मेरे घर-गाँव का नाम) अपने गाँव को और हम सब को भूल गये हैं।

सच्चाई तो यह है कि मैं अपनी जन्मभूमि, जहाँ न केवल मैंने जन्म लिया वरन् मेरे बालपन के और प्रारंभिक विद्या-अध्ययन के अनेक वर्ष बीते, को कभी नहीं भूला। 'अनकहा ही रह गया' में प्रकाशित कविता, 'जगम्मनपुर' की अन्तिम पंक्तियाँ हैं –

मैं जगम्मनपुर कभी भूला नहीं/ रूप उसका खोजता हूँ हर कहीं
याद ने जब-जब हृदय व्याकुल किया /अश्रुधाराएँ उमड़ कर हैं बहीं
चूमने को धूलि अपने गाँव की / प्राण रहते हैं सदा आतुर बहुत
याद आता है जगम्मनपुर बहुत

बुंदेलखण्ड में जनपद जालौन का गाँव जगम्मनपुर अपने प्राकृतिक सौंदर्य एवं ऐतिहासिक स्थलों के लिए विख्यात है। यमुना के तट पर बसे गाँव से लगभग दो मील की दूरी पर 'पँचनदा' है, जहाँ यमुना में चार सहायक नदियाँ मिलती हैं और जहाँ स्थित मंदिर के महन्त से भेंट करने स्वयं तुलसीदास पधारे थे। गाँव से कुछ दूरी पर 'कर्णखेरा' है जिसके सम्बन्ध में कहा जाता है कि महाभारत-काल के दानी कर्ण वहाँ दान देने बहुधा आया करते थे। विश्रांति घाट, सुरही की लाट

तथा काला हरदौल के स्मारक जैसे अनेक स्थल जगम्मनपुर की ऐतिहासिक ख्याति की गवाही देते हैं। जगम्मनपुर एस्टेट के अधिपति द्वारा बनवाया गया किला भी बुंदेलखण्ड के प्रसिद्ध पर्यटक-स्थलों में गिना जाता है।

मेरे पूर्वज मुझ से पाँच-पीढ़ियों पूर्व मथुरा के निकट के एक गाँव से जाकर जगम्मनपुर में बस गये थे। प्रारंभ में बहुत दिनों तक मेरे पूर्वज रियासत के मंदिर के मुख्य पुजारी रहे। बाद में मेरे ताऊ जी पं. कन्हैयालाल चतुर्वेदी रियासत के दीवान के पद तक पहुँचे तथा उनके पुत्र श्री जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी हिन्दी के मूर्धन्य पत्रकार तथा भारतीय श्रमजीवी पत्रकार संघ के संस्थापकों में से एक थे। मेरे पिता पं. दामोदर दास चतुर्वेदी जगम्मनपुर तथा जिला फतेहपुर स्थित असोथर एस्टेट में महत्वपूर्ण पदों पर रहे । मेरा जन्म तथा वर्नाक्यूलर मिडिल तक की शिक्षा गाँव में ही हुई। बाद में इसी मिडिल स्कूल में सहभाषा (सैकिंड लैंग्वेज) के रूप में उर्दू के स्थान पर अंग्रेजी लागू होने पर मैंने कुछ दिनों इंगलिश टीचर के रूप में अध्यापन भी किया।

अब जगम्मनपुर में मेरे परिवार का कोई सदस्य नहीं रहता। हवेलीनुमा घर खंडहर हो गया है, किन्तु उसके परिसर में स्थित शिवमंदिर तथा पीपल और बड़ के दो विशाल वृक्ष आज भी मौजूद हैं। मंदिर मेरे एक ताऊ जी पं. मूलचंद चतुर्वेदी द्वारा संवत् 1993 में बनवाया गया था।

इस काव्य-संग्रह में मैंने 'अनकहा ही रह गया' में प्रकाशित तीन कविताओं ,'जगम्मनपुर', 'रामसिया' तथा 'एक पाती' को अपने नये उनंचास गीतों के साथ सम्मिलित किया है। इन तीनों रचनाओं का संदर्भ तथा सीधा सम्बन्ध मेरी भावनाओं एवं संवेदनाओं से बहुत मजबूती से जुड़ा है।

इस काव्यकृति के प्रकाशन में मेरे पुत्र राकेश, पुत्रवधू डॉ. विशाखा तथा पौत्र दिव्यांशु ने बहुत सहायता की है। इनके अतिरिक्त जगम्मनपुर के ग्राम प्रधान, श्री अनूप कुमार झा के सहयोग तथा मेरे गाँव से कुछ ही दूरी पर स्थित गाँव मदारीपुर के वासी और सम्प्रति लखनऊ में रह रहे अपने कविमित्र श्री श्यामनारायण 'श्याम' के प्रोत्साहन और परामर्श ने मुझे बहुत सम्बल प्रदान किया है। मैं इनके प्रति हृदय से आभार व्यक्त करता हूँ।

दि. 3 अप्रेल, 2011,

—ओमप्रकाश चतुर्वेदी 'पराग'

अनुक्रम

गीत कविता का हृदय है

हम अछांदस आक्रमण से, छंद को डरने न देंगे
युग-बयार बहे किसी विध, गीत को मरने न देंगे

गीत भू की गति, पवन की लय, अजस्र प्रवाहमय है
पक्षियों का गान, लहर-विधान, निर्झर का निलय है
गीत मुरली की मधुर-ध्वनि, मंद-सप्तक है प्रकृति का
नवरसों की आत्मा है, गीत-कविता का हृदय है
बेसुरे आलाप को, सुर का हरण करने न देंगे

शब्द-संयोजन सृजन में, गीत सर्वोपरि अचर है
जागरण का शंख, संस्कृति-पर्व का पहला प्रहर है
गीत का संगीत से संबंध शाश्वत है, सहज है
वेदना की भीड़ में, संवेदना का स्वर मुखर है
स्नेह के इस राग को, वैराग्य हम वरने न देंगे

गीत है सौंदर्य, शिव साकार, सत् का आचरण है
गीत वेदों, संहिताओं के स्वरों का अवतरण है
नाद है यह ब्रह्म का, संवाद है माँ भारती का
गीत वाहक कल्पना का, भावनाओं का वरण है
गीत-तरु का विकच कोई पुष्प, हम झरने न देंगे

◈

मेरे गीत

मैंने भी कुछ गीत लिखे हैं
संभव है कुछ पंकिल भी हों, पर कुछ परम पुनीत लिखे हैं

भाव कभी अपने तो कभी पराए लेकर
मैंने जीवन में रोया है, गाया भी है
कभी वसंत भर गया है फूलों से झोली
पतझर ने हर पत्ता कभी सुखाया भी है
कुछ भविष्य, कुछ वर्तमान, कुछ भोगे हुए अतीत लिखे हैं

जब भी आँख उठाकर इधर-उधर देखा है
मुझको कभी लगा कि यहाँ सब कुछ मेरा है
और कभी अपने आँगन में रात बिताकर
प्रात लगा यह तो बंजारों का डेरा है
मानस के पृष्ठों पर शत्रु अधिक, थोड़े से मीत लिखे हैं

कभी-कभी तो पर्वत से भी टकराया हूँ
और कभी पोखर ने मुझको डरा दिया है
कभी छीन लाया सूरज से सारी किरणें
कभी एक जुगनू ने मुझको हरा दिया है
कुछ उछाल करके चुनौतियाँ, कुछ होकर भयभीत लिखे हैं

कभी तुम्हारे सुख-दुख को लय छंद दिए हैं
और कभी गीतों में अपने को ढाला है
कभी सुधा की थोड़ी सी बूँदों की खातिर
सागर का सारा विष मैंने पी डाला है
उगली है कुछ आग, और कुछ होकर बहुत विनीत लिखे हैं

◈

ज़िंदगी गाँव की

हम शहर में भटकते रहे, हर क़दम
यांद आती रही ज़िंदगी गाँव की

इस शहर ने हमें अर्थ के सुख दिए
वर्ष अनगिन मगर उम्र के ले लिए
गाँव का घर अँधेरा रहा रात भर
हम जलाते रहे रोशनी में दिए
तन झुलसता रहा भीड़ की आग में
मन सिराती रही ज़िंदगी गाँव की

हर सवेरे चहकतीं चिरैयाँ वहाँ
भोंपुओं ने किए भोर कर्कश यहाँ
पनघटों की खनक, पायलों की झनक
छोड़कर हर महक, आ गए हम कहाँ
तेज रफ़्तार में, वक्त की मार में
झिलमिलाती रही ज़िंदगी गाँव की

गीत बनते रहे खेत-खलिहान में
दर्द-दुख-सुख बँटे जान-पहचान में
ढोल बजते रहे साँझ चौपाल पर
और होती रही बतकही कान में
लोकधुन की थिरकती हुई ताल पर
गुनगुनाती रही ज़िंदगी गाँव की

प्रीति का हर तरफ था उजाला घना
पीर का तम रहा अधमरा अनमना
लोग मिलते गले, आम के तरु तले
सिद्ध होतीं सहज साधना कामना
बोझ से इस शहर के थकी पीठ को
थपथपाती रही ज़िंदगी गाँव की

ज़िंदगी गीत गाती रही

शाप फलता रहा, ताप जलता रहा
पीर पर्वत बनी खिलखिलाती रही
छाँव में, धूप में, नित नए रूप में
ज़िंदगी झूम कर गीत गाती रही

पाँव जब भी बढ़े मंज़िलों की तरफ
राह ने दी चुनौती बड़े जोर से
अपशकुन सामने से गुजरने लगे
वर्जना के चले दाँव हर ओर से
अटपटी थी डगर, मावसी तम, मगर
एक लौ देर तक झिलमिलाती रही

प्यार ने हाथ थामा कभी रोककर
और दुत्कार दी रंजिशों में कभी
पारदर्शी कभी पत्थरों के महल
ओट की मलमली साज़िशों ने कभी
बर्फ में आग में, रोष में राग में
एक ज़िंदादिली गुदगुदाती रही

थी दुकानें बहुत, भीड़ भारी लगी
सैकड़ों लोग थे व्यस्त व्यापार में
कुछ ख़रीदा न बेचा, तमाशा बना
मैं खड़ा ही रहा बीच बाजार में
होश आता रहा, होश जाता रहा
बेखुदी में खुदी मुस्कुराती रही

नफ़रतों से सराबोर संसार में
गूँजते हैं हवा में महज़ मरसिए
मैंने गाई ग़ज़ल, गीत ऐसे रचे
जो मिलाते रहे प्यार के क़ाफ़िए
तालियाँ भी मिलीं, गालियाँ भी मिलीं
रोज़ महफ़िल मुझे आज़माती रही

◈

सुलग उठी शाम

दिवस बुझा, सुलग उठी शाम
खोज रहे पंछी निज धाम

सूरज की गरमी में बहा जो पसीना
जल्लादी लोहे ने पोर-पोर बीना
पाँवों की झोली में, बस थकान आई
सेजों का चैन, बुरे सपनों ने छीना

घर-बाहर साथ रहे लोग
पूछ रहे रिश्तों के नाम

ज़हरीला गंगा का सुधा-सदृश पानी
मौसम-बेमौसम, मेघों की मनमानी
पनघट से टकराते, घर सूखे रीते
सागर ने मर्यादा छोड़ दी पुरानी

बिखर रहे मन के सब कोश
सिमट रहे तन के आयाम

गाँवों को लील रहीं, शहरी सीमाएँ
खेतों में उगतीं, बहुमंजिली सराएँ
शुक भूले राम-राम, हलो हाय कहते
आमिर, धोनी की चौपाल पर कथाएँ

मचा कारखानों का शोर
बंद हुआ करघों पर काम

◈

आयातित बाड़

चूल्हा ठंडा लकड़ी गीली
सीली है माचिस की तीली
साँस नहीं ले रही पतीली
जठर-ज्वाल हो चली नशीली

घुंघुरू में तुतलातीं नृत्य की ऋचाएँ
गढ़तीं आँगन के आकार की कथाएँ
शंकित पद-भंगिमा लजीली

पीड़ा ने अंतस का द्वार खटखटाया
अधरों से टकरा कर गीत कुनमुनाया
छंद-मुक्त राह है कँटीली

घर का माली जब से है गूँगा बहरा
देसी फल-फूलों पर परदेसी पहरा
आयातित बाड़ है हठीली

◈

लक्ष्य तक हर डगर जाएगी

गीत गाऊँ मैं, तुम गुनगुनाओ ग़ज़ल
मावसी रात यूँ ही गुज़र जाएगी
हाथ छोडूं न मैं, संधि तोड़ो न तुम
नाव निश्चित नदी पार कर जाएगी

यह जो दुनिया है छलनी के मानिंद है
पर्त पर इसकी कुछ भी ठहरता नहीं
कंटकों की डगर पर खिले फूल भी
यह न सोचो कभी घाव भरता नहीं
रक्त बहता रहे, पंखुरी पर कहे
पीर हद से बढ़ी तो बिखर जाएगी

तुम पे गुज़री है जो, सब ने भोगी वही
उम्र की राह सूखी हैं, गीली भी है
मंज़िलें पास भी हैं, कभी दूर भी
चाल संयत भी है, कुछ नशीली भी है
राह कोई भी हो, तुम तो चलते रहो
देखना, लक्ष्य तक हर डगर जाएगी

कल को होना है क्या, और कल क्या हुआ
यह न सोचे, सदा आज में ही पिए
काल जय कर चुका है महाप्राण वह
जो सुधा हो कि विष, मुस्कुरा कर पिए
दर्द के हाथ मेहनत अगर बिक गई
तो खुदी की बुलंदी किधर जाएगी

ज़िंदगी खेल का एक मैदान है
सिद्ध कर दो कि अच्छे खिलाड़ी हो तुम
इस तरह दो चुनौती नियति-चक्र को
मृत्यु कहने न पाए, अनाड़ी हो तुम
देख जीवट तुम्हारा निराकार की
मूर्ति साकार होकर सँवर जाएगी।

◈

अमिय गरल पय सुरा

बाहर से हूँ हरा-भरा, भीतर से रीता हूँ
अमिय गरल पय सुरा, सभी मजबूरन पीता हूँ

सुनी अजान न मुर्गा बोला कितनी भोरों से
बरसों हुए मुँडेरों पर बैठा न कोई कागा
दिन भर दरवाज़े पर कोई दस्तक नहीं हुई
आधी रात कूद कर छत से चोर नहीं भागा
साँसों में हलचल, प्राणों में स्पंदन नहीं हुआ
मैं कैसे मानूं मैं भी धरती पर जीता हूँ

किसी भ्रमर का फूल, शूल भी मैं न किसी पग का
किसी लता ने मेरे तन को तना नहीं माना
किसी अधर की हँसी न किसी नयन का आँसू हूँ
जल ने धुला, पंक न मन को सना नहीं माना
बदले संदर्भों में मुझको लगने लगा कि मैं
रावण की रामायण, दुर्योधन की गीता हूँ

किसको मतलब मेरे होने और न होने से
मैं न किसी का बुरा, किसी का भला किया करता
बिना बुलाया अतिथि कभी आए कि चला जाए
उसकी गतिविधि पर कोई क्या ध्यान दिया करता
मुझको तो अब इसका भी कोई अहसास नहीं
वर्तमान हूँ या भविष्य, या सदियों बीता हूँ

◈

विसंगतियाँ

आज भी संदर्भ हैं वे ही, आज भी वे ही परिस्थितियाँ
आज भी बंदीगृहों में हम जी रहे सौ-सौ विसंगतियाँ

उड़ चला आकाश में पंछी, बोझ लेकर पंख पर भारी
बेरुखी विपरीत धारों में, डगमगाती नाव पथहारी
हैं हवाओं में गरल के कण, घिर रही हैं मेघमालाएँ
है तटों पर शांति मरघट की, धार में युद्धक विषमताएँ
घोंसले में लौटना मुश्किल, पार जाना भी नहीं संभव
मंज़िलों से दूर हैं राहें, सागरों से दूर हैं नदियाँ

सिंह से तो बच गया मृग पर, जाल में उलझा शिकारी के
आरती का दीप तो जलता, काँपते हैं कर पुजारी के
मुक्त उपवन में उगे बिरवे, क्यारियों की माँग करते हैं
एक माला में गुँथे मनके, द्वैत के भ्रम में बिखरते हैं
मुक्ति का सूरज उगा छत पर, दास्य का तम-तोम आँगन में
सर्व भास्वर कल्पनाओं की, हैं कहाँ साकार परिणतियाँ

◈

शत्रु भी, मीत भी

मैं तुम्हारा शत्रु भी हूँ, मीत भी हूँ,
प्रीति का पद हूँ, प्रलय का गीत भी हूँ
आज भी मैं हूँ गगनचुंबी इमारत
ताज हूँ कल का, कुतुबमीनार भी मैं
कल सजेगा चंद्रमा के भाल पर जो
हूँ उसी विज्ञान का दरबार भी मैं
तुम मुझे यूँ कालखंडों में न बाँटो
वर्तमान, भविष्य और अतीत भी हूँ

मैं सुधा का पात्र हूँ, घट भी गरल का
राह पर मैं दीप, मंजिल में अंधेरा
देवता भी हूँ कभी शैतान भी मैं
आदमी की हर कला का हूँ चितेरा
पूर्ण आहुति भी, अधूरा यज्ञ भी मैं
हूँ कभी अप्रत्यक्ष, कभी प्रतीत भी हूँ

मौत साहूकार-सी दर पर खड़ी है
एक समझौता अजब मैंने किया था
उम्र बीती ब्याज की किस्तें चुकाते
चंद साँसों का कभी कर्जा लिया था
वक्त के तूफान में थमती, बिखरती
ज़िंदगी की हार भी हूँ, जीत भी हूँ

◈

संचारी संसृति

सुख-दुख मय यह सृष्टि सतत संचारी है
कभी भोर है, कभी रात अँधियारी है

केवल सीधी राहों पर चलने वाले
बस अपने ही तन-मन को छलने वाले
हर अँधियारे से टकराने की खातिर
एक अकेले दीपक से जलने वाले
मावस सदा रही पूनम पर भारी है
और राह में पग-पग पर बटमारी है

हर आँगन में कई-कई दीवारें हैं
तार-तार में अलग-अलग झंकारें हैं
तट तटस्थ है, धार के विरोधी तेवर
माँझी घायल है, टूटी पतवारें हैं
आर-पार दोनों में मारामारी है
नाव न डूबे किसकी जिम्मेदारी है

राही को सागर-तल तक जाना होगा
नभ के छोरों को भी छू आना होगा
सुख की सरिता को सीमाओं में रखकर
दुख के पर्वत से भी टकराना होगा
संसृति वृहद् खेल, जीवन लघु पारी है
सब की अपनी-अपनी हिस्सेदारी है

◈

जैसे हो, वैसे ही

कोई भी गुण-अवगुण आरोपित मत करना
जो भी हो, जैसे हो, वैसे ही जी लेना

मंज़िल तक एक भी नहीं पहुँची
कहने को कई-कई राहें थीं
मन में थी आग-सी लगी, तन के
पास बहुत पनघट की बाँहें थीं
मत रखना कोई उम्मीद घिरे बादल से
ऊसर की आँखों का पंचामृत पी लेना
नग्न देवताओं का चित्रण ही
मानक है आधुनिक कलाओं का
बाजारों में जो बिक सकता है
सच ही है झूठ उन कथाओं का
रास जो न आए, नव-संस्कृति का यह दर्शन
देखना न सुनना, बस अधरों को सी लेना
शंखनाद जिनको करना था, वे
हैं तोता-मैना से सम्वादी
करनी की पत्रावलियाँ कोरी
कथनी की ढपली है फौलादी
कस लेना सौदे के सत्य को कसौटी पर
पीतल को पीतल के दामों में ही लेना

◈

दुनिया-दर्पण

दुनिया देखूँ, या दर्पण देखूँ
सदियां देखूँ, या कुछ क्षण देखूँ

मैं धरती की भीड़-भाड़ देखूँ
या सागर की छेड़छाड़ देखूँ
तन पर उग आया कबाड़ देखूँ
या मन के कृश गोड़-हाड़ देखूँ
दबे दर्द देखूँ अंधियारे के
या सूरज के उघरे व्रण देखूँ

राजनीति का घंटाघर देखूँ
या फिर गुरुकुल के खंडहर देखूँ
बाज़ों के नाखून प्रखर देखूँ
या चिड़ियों के टूटे पर देखूँ
स्वर्ण-शिखर देखूँ अतीत के या
वर्तमान के बिखरे कण देखूँ

चंदन के वन में काजल देखूँ
या कीचड़ में खिला कमल देखूँ
क्षीरसिंधु में मात्र गरल देखूँ
या मदिरा में गंगाजल देखूँ
नारद के मुख का प्रत्यारोपण
या शंकर के शापित गण देखूँ

◈

तो न

प्रार्थना से दिन बदल जाते
तो न मंदिर से कहीं जाता

चिलचिलाती धूप में चूता पसीना
कड़कड़ाती शीत, तन पर वस्त्र झीना
रोटियों के स्वप्न तक आते नहीं हैं
मिल गया तो जल, नहीं तो प्यास पीना
आँसुओं में दर्द ढल जाते
तो कभी पलकें न झपकाता

भीड़ है कहकर तटों ने दुरदुराया
नाव ने पतवार से झगड़ा बताया
दूर से सब तैरने के गुट सिखाते
पास आकर थामने कोई न आया
सांत्वना से दिल बहल जाते
तो न रिश्तों पर तरस खाता

योग्यता का मूल जल में पंक जैसा
लोकप्रियता का प्रथम पर्याय पैसा
बिक रही है हर कला अब कौडियों में
हीरकों की हाट में यह काँच कैसा
पतझरों में फूल खिल जाते
मधुऋतों के गीत क्यों गाता

◈

दुख हमारे-तुम्हारे

नाव, पतवार, मस्तूल, माँझी सभी लुप्त होंगे, किनारे फिसल जाएँगे
तुम जो तट से हटे, दूर सिमटे कहीं, तो ये सारे नज़ारे बदल जाएँगे

डूबना, तैरना, पार जा लौटना, प्रेयसी था तुम्हारा सहारा सदा
क्या हुआ, चल पड़ी कौन सी आँधियाँ ज़िंदगी की निराली हुई हर अदा
आस, विश्वास के डगमगाते क़दम, प्यार के दम से सारे सँभल जाएँगे

फूल शबनम भी है, फूल तितली भी है, फूल मकरंद भी, फूल है गंध भी
फूल शूलों के घर में भी खिलता रहा, और भ्रमरों की है प्रीति-सौंगध भी
जिस किसी से मिलो, फूल बन कर खिलो, हर अधर पर शरारे मचल जाएँगे

कोई दो दिन जिया, कोई बस एक दिन, चार दिन तो कहाँ कब किसी को मिले
चैन चंचल है तो पीर ही कब अचल, तुम सँजोना न सपनों में शिकवे-गिले
मन में भय के उमड़ते हुए कृष्ण-घन, नयन से बन पनारे निकल जाएँगे

उम्र का दौर अंतिम है, खोजो न अब, तुम ठिकाना किसी दूसरे ठौर का
जिसकी छाया में अब तक जिया, मैं उसे छोड़ आँचल न थामूँ किसी और का
तुम न बदलो, तनिक धैर्य से काम लो, दुख हमारे-तुम्हारे पिघल जाएँगे

◈

गीत की शरण में

कुछ दिनों से मैं ग़ज़ल की वीथियों में रम रहा था
लौटकर फिर गीतमय वातावरण में आ गया हूँ

मन लुभाती थीं ग़ज़ल की शोखियाँ, चंचल अदाएँ
शेरियत के शोर में, मैं भूल बैठा था ऋचाएँ
रेशमी ज़ुल्फें रिझाने और उलझाने लगीं थीं
गुंजरित हर ओर थीं मदमस्त साक़ी की सदाएँ
इंद्रियों से हो विरत, अंतःकरण में आ गया हूँ

मैं ग़ज़ल को एक नया स्वरूप देना चाहता था
मयक़दों को मस्जिदों की धूप देना चाहता था
इश्क़ जो बस देह की पगडंडियों पर चल रहा था
उसे आत्मिक-राजपथ का रूप देना चाहता था
महफ़िलों से मंदिरों के आचरण में आ गया हूँ

मौन रहकर भी मुखर था गीत मेरी हर ग़ज़ल में
ज्वाल के नीचे प्रवाहित थी अनाहत शांति तल में
मैं ग़ज़ल को गीत की ही एक शाखा मानता था
और ऐसी धारणा अब भी अटल है मनस्तल में
गीत ले, 'गीताभ, मैं तेरी शरण में आ गया हूँ।

◈

गीत-संगीत

एक गीत और गा पराग
शब्दों को छंदों में पाग

लहर-लहर लहराए स्वरमय संगीत
तालों पर थिरक उठे तेरा मधु-गीत
वंशी की मादक धुन पर ऐसा झूम
देव, दनुज, अग-जग सब हों तेरे मीत
रात बिता शूलों के संग
अधरों पर फूलों के जाग

कहने दे जो कहते छंद को अशक्त
रहने दे उनको संगीत से विरक्त
कविता के कापालिक होंगे वे लोग
तू तो है वीणा की देवी का भक्त
रचने दे उनको वैराग्य
तू तो रख गीतों में राग

वर्षा की बूँदों में, निर्झर में गान
कोयल के कलरव में, स्वर का अभिमान
मलय सरित की सरसर संगत संवाद
शब्द-नाद संगम का समुचित सम्मान
लय, गति की बंदिश से मुक्त
कविता उगलेगी बस आग

◈

गीत अधरों पर आया है

बहुत दिनों के बाद गीत अधरों पर आया है
मन-उपवन में सुमनों का सौरभ मुस्काया है

बहुत दिनों के बाद व्यथा कुछ मुरझाई
तज कर लंबी नींद कामना जागी है
दुख की हथकड़ियों से मुक्त हुआ है मन
बैरागी साधना हुई अनुरागी है
बहुत दिनों के बाद गला हिमखंड उदासी का
खुशियों ने पैमाना भर भर कर छलकाया है
धुआँ-धुआँ हो चली हैं सभी शंकाएँ
आशाओं की किरणें उतरी आँगन में
द्वैत और अद्वैत विशिष्टाद्वैत हुए
निर्गुण-सगुण हुए सब एक रूप मन में
मन का कलुषित आतप, तन के तप से हार गया
सात्विक श्रद्धा का सागर उमड़ा लहराया है
अब न याद आती हैं वे काली रातें
अब न स्वप्न में पाँव लड़खड़ा जाते हैं
कर्ज़ कर दिए चुकता सब दुख-दर्दों के
लेनदार अब नहीं द्वार पर आते हैं
देवी और देवता जो वामांग रहे, उनसे
सदा दाहिने रहने का आश्वासन पाया है

◈

अब न मनमानी करो

जी चुके हो तृप्ति का जीवन
अब चलो उपराम के आँगन

यदि विगत के जाल में उलझे रहे तो
याद आती ही रहेंगी कुल कथाएँ
जो कभी वरदान देवों का लगीं थीं
सिद्ध होंगी आसुरी वे वासनाएँ
हो चुका जो कुछ हुआ अब तक
अब न मनमानी करो हे मन

बालपन में तो मनों ममता मिली है
और यौवन ने अहं को तुष्टि दी है
घिस चुकी ईटों, उभरती झुर्रियों ने
खंड्हरों के आगमन की पुष्टि की है
हर उजाला धुंध में बदला
और मत मैला करो नर-तन

नाव तट पर है कभी भटकी भँवर में
ज़िंदगी तो सुख-दुखों का सिलसिला है
शूल जब बोए, चुभन ही तो उगेगी
नागफनियों पर कहाँ शतदल खिला है
कर्मफल से भागना कैसा
और क्यों स्वीकार में उलझन

पूर्वजों से बेहिसाब मिला तुम्हें जो
वंशजों को अब वही तुम प्यार दे दो
यह धरा हो स्वर्ग से भी श्रेष्ठ, सुंदर
इसलिए सब अनुभवों का सार दे दो
पीढ़ियों का अंतराल रहे
पर न हो आचार में अनबन

वीर थे तुम, वीर ही हो, वीरता से
उम्र के इस पार को उस पार दोगे
ज़िंदगी को तो बहुत कुछ दे चुके हो
मौत को भी तुम कई उपहार दोगे
जीव, माया, ब्रह्म सब तुम ही
हो तुम्हीं नर और नारायण
अब न मनमानी करो हे मन

◈

पथ को मोड़ रहा हूँ

तुम हिमाद्रि के अंग-अंग को भंग कर रहे
मैं तो माटी के कण-कण को जोड़ रहा हूँ

युग-युग से यह जोड़-तोड़ का खेल चल रहा
प्रतिवेशी का मंगलमय अस्तित्व खल रहा
बातें होतीं पंचशील की, महामिलन की
छुरी बगल में, अधरों पर मृदुहास छल रहा
प्रीति-प्रतीति तुम्हारो पाले में पहुँचा कर
मैं तो नफ़रत का हर दावा छोड़ रहा हूँ

बुद्धि-यंत्र को प्रलय ध्वंस का तंत्र बनाया
शक्ति-शास्त्र का मंत्र, दुर्बलों पर अज़माया
तुम वसुधा को स्वर्ग बना सकते थे, लेकिन
तुमने द्वेष, दंभ, हिंसा का पथ अपनाया
तुम शैतान बने, पर मेरे शत्रु नहीं हो
मैं तो शैतानों की बाँह मरोड़ रहा हूँ

वरदानों का दोहन, शापों का संवर्धन
मूल्यों का मर्दन, संस्कृति का विकृत दर्शन
सुख के रूप और दुख की सब परिभाषाएँ
जीवन-शैली में आमूल-चूल परिवर्तन
तुम इतिहास और भूगोल रहो दुहराते
मैं तो आरोपित सीमाएँ तोड़ रहा हूँ

तुम मनुष्य हो या पशु, जड़ हो या चेतन हो
संवेदन के स्रोत कि भावों का निर्जन हो
साहस, शौर्य, शक्ति, संयम सब व्यर्थ नहीं क्या
यदि परिवेशों से समझौता ही जीवन हो
तुम जैसे चाहो बह लो इस समय-धार में
मैं तो नियति-नदी के पथ को मोड़ रहा हूँ

◈

संक्रमण काल

मैं अतीत की राहों में भटका करता हूँ
तुम भविष्य की बाँहों में खोए रहते हो
वर्तमान से आँखें आखिर कौन मिलाए

वे कहते हैं भारत सोने की चिड़िया था
दूध-दही की नदियाँ यहाँ बहा करती थीं
घर-बाजार-खेत सब हरे भरे उजले थे
अष्टसिद्धि, नवनिधियाँ नित्य रहा करती थीं
मैं निराश-सा आसपास देखा करता हूँ
तुम प्रभात की आशा में सोए रहते हो
दुविधा के इस दिवास्वप्न से कौन जगाए

वे कहते हैं, संस्कृति और सभ्यता अपनी
दुनिया भर में सर्वश्रेष्ठ मानी जाती थी
धर्म, नीति, जीवन-दर्शन, विज्ञान, कलाएँ
नाम हमारा लेकर पहचानी जाती थीं
मैं सच और झूठ के विश्लेषण में रत हूँ
तुम प्रतीति के कृत्रिम बीज बोए रहते हो
सच्चे मोती की फसलें अब कौन उगाए

वे कहते हैं हम पर बहुत अन्न है, धन है
कई कुबेर हमारे ही घर के वासी हैं
लेन-देन में लिप्त, किंतु निर्लिप्त भाव से
बाहर से गृहस्थ, अंतर से संन्यासी हैं
मैं दोहरे चरित्र को जीना सीख रहा हूँ
तुम नकली मुस्कानों को ढोए रहते हो
असली चित्र ज़िंदगी के अब कौन दिखाए

खेत जला खेतिहर खुदकुशी करते देखे
पेट के लिए पत्थर ढोती माएँ देखीं
सूरज डूब रहा है, जुगनू जश्न मनाते
मंदिर और मस्जिदों में हत्याएँ देखीं
मैं कहता यह मूल्यों का संक्रमण-काल है
तुम दामन के दागों को धोए रहते हो
युग-यथार्थ की कीमत बोलो कौन चुकाए

◈

कुछ और गीत

ज़िंदगी थोड़ा समय दे और मुझको
गीत मैं कुछ और गाना चाहता हूँ

लड़खड़ाते पाँव लेकर चल रहा हूँ
हारते कुछ दाँव लेकर चल रहा हूँ
क्वार की यह धूप कंधों पर उठाए
कसमसाती छाँव लेकर चल रहा हूँ
खुद कुआँ पूछे कि तेरा घर कहाँ है
मैं उसे उस घाट लाना चाहता हूँ

आदमी चलता नहीं, चलती सड़क है
पुलिसिया आवाज़ में कितनी कड़क है
काँच के मांसल सजे-सँवरे सदन में
दिल नहीं, केवल मशीनों की धड़क है
चीर हरते चोर शूलों को सुलाकर
नींद फूलों की चुराना चाहता हूँ

सूर्य पश्चिम से निकलना चाहता है
चंद्रमा पावक उगलना चाहता है
एक नकली छाप चेहरे पर लगाकर
आदमी खुद को बदलना चाहता है
कुछ अँधेरा छाँट कर इस पार का, फिर
बाद में उस पार जाना चाहता हूँ

स्नेह के कुछ दीप मंदिर में जला लूँ
साधना के राजपथ को नाप डालूँ
इस धरा की धूलि माथे पर चढ़ाकर
पूर्वजों की देन का कुछ ऋण चुका लूँ
हो जहाँ बदनाम अब मुन्नी न शीला
नीड़ कुछ ऐसे बनाना चाहता हूँ

◈

जननी

(माँ विद्यादेवी के निधन पर)

तुझे अग्नि को अर्पित करके माँ जब मैं घर आया
जलने लगे पाँव धरती पर, रही न सिर पर छाया

बाबा, नाना, पापाजी, चाचा, ताऊजी, भाई
बहुत सुना, पर मुन्ना की आवाज़ नहीं ही आई

पिता छोड़कर गए उस समय था मैं छोटा बालक
तू ही माता-पिता बनी तब, तू ही थी प्रतिपालक

तू जब विधवा हुई बहुत छोटी थी तू भी एँ माँ
आँसू पीकर तूने झेली पीड़ा, धूलि औ' धुआँ

मुझे सुधा देकर तूने नित विष के घूँट पिए थे
सारे सुख मेरी रीती झोली में डाल दिए थे

तूने डूब रही मेरे साहस की नाव उबारी
अपने आँचल से मेरी कंटकमय राह बुहारी

जब-जब दुनिया ने मुझको अज़माया और सताया
तूने मेरे तन को प्रस्तर, मन को लौह बनाया

तूने मेरे सुख की खातिर, सौ-सौ माँगे थे वर
मेरा रक्षा-कवच बनाया था तूने घर-मंदिर

जो कुछ भी हूँ जननी, बस मैं तो प्रसाद हूँ तेरा
मुझ में जो कुछ है तेरा है, रंच नहीं है मेरा

माँ मैंने तेरे प्रति कोटि-कोटि अपराध किए हैं
क्षमा किया हर बार और नित प्यार-दुलार दिए हैं

तू थी कृष्ण-भक्त, मीरा-सी तपस्विनी शुचि नारी
प्रखर तेज से तेरे हर तम, हर कालिख थी हारी

आज भी हवाओं में तेरी साँसों की खुशबू है
जहाँ दया, ममता, करुणा है, लगता तू ही तू है

◈

ध्वस्त हुए अहसास
(पत्नी निर्मला के निधन पर)

ध्वस्त हुए अहसास सभी, प्रिय मीत तुम्हारे जाने से
सोच रहा हूँ मैं अब सुख-दुख नापूँ किस पैमाने से

तुम रहती थीं तो घर घर था
साथ चलीं तो सफ़र सफ़र था
साया जब तक रहा तुम्हारा
मुझको नहीं नियति से डर था
अब तो मन शंकित रहता है
हर जाने-अनजाने से

सन पैंतिस में जीवन-धारा
दिल्ली के नभ पर इक तारा
तिरपन में मेरे घर आया
लेकर यौवन का उजियारा
मैं बुनने लग गया ज़िंदगी
उसके ताने-बाने से

तुमने जीवन-सत्य सिखाए
तुमने ही सपने दिखलाए
जग ने अपनाए हैं जो भी
मैंने गीत तुम्हारे गाए
क्या अब मेरी कलम लिखेगी
मत पूछो दीवाने से

मैं प्रिय तुझ में ही रहता था
सब सुख-दुख तुझ से कहता था
तेरे होठों से मुस्काता
तेरे दागों से दहता था
तेरे ईर्द-गिर्द मँडराता
किसी न किसी बहाने से

अब तेरे बिन ही जीना है
चिर वियोग का विष पीना है
शायद उसको भी कुछ दुख हो
जिसने मेरा सुख छीना है
अब तो गीत-ग़ज़ल उभरेंगे
यादों के मयखाने से

◈

हम पिछड़ते रहे

तेज़ रफ़्तार से चल रहा था समय
साथ चलते हुए हम पिछड़ते रहे

ज़िंदगी ने किए इस तरह कुछ सितम
इस समय-चक्र में अब ख़ुशी है न ग़म
चोट पड़ती रही, दर्द होता रहा
हम मगर होंठ सींकर अकड़ते रहे

कौन अपना, पराया यहाँ कौन है
लड़खड़ाती ज़ुबाँ, हर नज़र मौन है
दुश्मनों से न आँखें मिलाई कभी
दोस्तों से हमेशा झगड़ते रहे

रहबरों ने न हमको दुलारा कभी
दे दिया रहजनों ने सहारा कभी
लोग आगे गए, लोग पीछे रहे
हाथ मलते हुए हम बिछुड़ते रहे

पतझरों ने पुकारा बड़े प्यार से
पर बहारें रहीं दूर अभिसार से
बेख़ुदी तो ख़ुदी को सताती रही
होश जब भी रहा होश उड़ते रहे

◈

पीड़ा

पीड़ा बस तूने ही मुझको प्यार दिया है
मैंने भी तुझ पर तन-मन-धन वार दिया है

खुशियों से तो है मेरी शत्रुता पुरानी
तुझे तो पता है मेरी कुल रामकहानी
छाँव किसी आँचल की पा न सका था बचपन
हर पनघट से प्यासी लौटी क्षुब्ध जवानी
जब भी खुद पाने की ख़ातिर हाथ बढ़ाया
हर दानी ने झटके से दुत्कार दिया है

मुझसे कतरा कर गुज़री है हर पुरवाई
पतझर ने पूछा, बहार ने आँख चुराई
आँधी ने आभास न होने दिया विरह का
चौराहों तक ही सीमित है आवाजाई
मंज़िल के फूलों ने मारे सौ-सौ ताने
पर पथ के शूलों ने बहुत दुलार दिया है

पक्षपात करता है जीवन देने वाला
या वरदानों के वितरण में व्याप्त घुटाला
मुझको तो ऐसा लगता है आसमान में
कर्मों का लेखा रखता कोई मतवाला
उन्हें मुफ़्त दे दिया सोमरस का मयख़ाना
मुझको विष का प्याला तलक उधार दिया है

यादें ही बाक़ी हैं छत-आँगन-चौखट की
खोज रहीं आँखें अपना घर दर-दर भटकी
मन ने मंदिर से मरघट तक दौड़ लगाई
जाने मूर्छित तन की साँस कहाँ पर अटकी
हर कोशिश बेकार, कशिश बेरंग हुई है
जीती बाजी को भी मैंने हार दिया है

त्यौहार नहीं है

माना सुख पर मेरा कुछ अधिकार नहीं है
पर अब यह मत कहना, दुख से प्यार नहीं है

दुखदाई बेला में मैंने जन्म लिया है
सारे दुष्ट ग्रहों ने मुझे सलाम किया है
अमियकुंड, पनघट दोनों से रही शत्रुता
जब भी प्यास लगी है, केवल गरल पिया है
कितना ही भरमाए, मरुस्थल की मृगतृष्णा
पर बादल की दया मुझे स्वीकार नहीं है

संघर्षों ने मुझको टकराना सिखलाया
क्रूर नियति के वारों ने चट्टान बनाया
जीवन जैसा मिला, जिया है शीश उठाकर
कभी मृत्यु के भय को मैंने सिर न झुकाया
जीवन दर्शन है, संस्कृति है, एक कला है
आती-जाती सासों का व्यापार नहीं है

देखूँ तो मावस के मन में कितना तम है
समय-चक्र में कब तक पतझर का मौसम है
मैं न सही वट-वृक्ष, पर न कुम्हड़े की बतिया
नियति-नटी भी देखे मुझ में कितना दम है
केवल सुख ही बाँट रहा जो दानी बनकर
वह बहुरुपिया दिन कोई त्यौहार नहीं है

◈

कौन हूँ मैं?

बहुत मुश्किल है खुद को शब्द देना
किसी तस्वीर का वर्णन नहीं है
मुझे बतला सके जो कौन हूँ मैं
सहज उपलब्ध वह दर्पण नहीं है
अगर मैं हूँ तो बस यह एक क्षण हूँ
मगर जो हो अमर, वह क्षण नहीं है
उसी परमात्मा का अंश हूँ मैं
विलग जिससे कि कोई कण नहीं है

◈

आर्ट ऑफ लिविंग के बेसिक कोर्स के दौरान पूछे गए एक प्रश्न के उत्तर में

वह गंध नहीं है

सच है मीत कि अब अपने संबंधों में वह गंध नहीं है
आज हमारे बीच किसी अपने की प्रिय सौंगध नहीं है

अव न घोंसला ही है साँझा, और न ही वह पेड़ पुराना
जिस पर सालों रहा बसेरा, घर आँगन जाना-पहचाना
पात झर गए, टूटी डालें, मुरझाई लिपटी लतिकाएँ
अब उपवन में कौन कि जो जाने प्रतिवेशी धर्म निभाना
रिश्ते के गवाह थे जो, वे सब के सब उड़ गए पखेरू
और हमारे बीच हवा के कागज़ पर अनुबंध नहीं है

गूँजा करती थीं गलियों में, मेरी और तुम्हारी बातें
लिख-लिख कर के नाम हमारा, बाँटी जाती थीं सौगातें
चकवा-चकवी, चाँद-चकोरी, देते थे उद्धरण हमारा
दिन अलसाते थे खुमार में, सोने में सकुचाती रातें
अब सपनों तक पर पहरेदारी है प्रहर घड़ी पल छिन की
मेलजोल तो बंद हुआ, पर यादों पर प्रतिबंध नहीं है

जाने किस आँधी ने विश्वासों के सारे विटप उखाड़े
किस गयंद ने प्रीति-गाँव के पनघट रौंदे, चमन उजाड़े
परदेसी बौछारों ने देसी माटी की नियत बदल दी
अभिसारों के तोड़े युग्म, श्लेष-शब्दों के अर्थ बिगाड़े
संबंधों के समीकरण सुलझाने में ही साँझ हो गई
शायद जीवन की किताब में, रिश्ता सरल निबंध नहीं है

◈

आत्म-नियंत्रण

तुम मुझसे तब मिलीं सुनयने
अर्थ मिलन के बदल गए जब
मैं तब तुम्हें चुराने पहुँचा
सब रखवाले सँभल गए जब

करता था जब सूर्य चिरौरी, लेता था चंद्रमा बलाएँ
साँसों में चंदन, कपूर था, अधरों पर मादक कविताएँ
तब तुम जाने कहाँ बसी थीं, जाने और कहाँ उलझी थीं
दुनिया झूम रही थी जिन पर, तुमने वे देखी न अदाएँ
आँगन ने तब मुझे पुकारा
पाँव द्वार से निकल गए जब

अब जब बिखर गईं सौगातें, अब जब बहुत बढ़ गई दूरी
जीवन-वन में भटक रहा हूँ, हिरण खोजता ज्यों कस्तूरी
प्राण देह में यूँ अकुलाते, जैसे नागफनी पर शबनम
तन को हवन-कुंड कर डाला, मन की बेल रही अंगूरी
कैसे आत्म-नियंत्रण होता
अवयव सारे मचल गए जब

हवस बहुत है, साधन कम हैं, रहीं अतृप्त अधम इच्छाएँ
इंद्रधनुष उस पार उगा है, हैं इस तट पर घोर घटाएँ
मैंने चाहा बहुत मोड़ दूँ, जीवन-सरिता के बहाव को
वश न चला कुछ, धँसी हुई थीं हस्त-लकीरों में कुंठाएँ
मैंने खुद को तब पहचाना
दर्पण सारे दहल गए जब

◈

बात तो कुछ भी नहीं

बात तो कुछ भी नहीं फिर
मन अकारण खिन्न क्यों है
राह में भी रोशनी है, और मंज़िल पर दिवाली
सामने बाज़ार बिखरा, ज़ेब भी अपनी न खाली
आहटों की हाट में, हूँ मैं न विक्रेता न क्रेता
शब्द के व्यापार में, मन मौन की करता दलाली
क्या हुआ यह आज का दिन
सब दिनों से भिन्न क्यों है
मन-पटल पर कौंधती हैं इन्द्रधनुषी कल्पनाएँ
और गत-यौवन हुईं अब तक न मन की वासनाएँ
मैं वही हूँ, भोर-रैन वही, वही जल-थल-गगन है
जग रहा मैं, सो गईं कैसे सकल संवेदनाएँ
आज बोतल से व्यथा का
निकल आया जिन्न क्यों है
लग रहा है तृप्ति को अब ऊब-सी होने लगी है
और यह मधु-यामिनी बस चंद घड़ियों की सगी है
प्रीति धन सम्मान बल वैभव सभी तन पर लपेटे
मन विकल है, प्राण की हर पोर पीड़ा में पगी है
आज हर विश्वास, आस्था
चेतना से छिन्न क्यों है

◈

चटके चेहरे

किरचों में बिखर रहे हैं, चटके चेहरे
साबुत दर्पण सब अंधे, गूँगे, बहरे

चूल्हें में सुलग रहे गोबर के गोले
आँगन में घुस आए हर-हर बम भोले
बैठक में नोंच रहे आगंतुक चिमटे
छत पर मँडराते हैं चीलों के टोले
वातायन बंद, पवन पीपल पर अटकी
द्वार पर प्रथाओं के पुरखाई पहरे

मन तो चंचल निर्झर नदिया का पानी
सिमट रही पोखर में तन की नादानी
खोने का भय, ललक सँजोने की ऐसी
झेली जीवन भर मौसम की मनमानी
धार में भँवर है, तट पर अंधी आँधी
बिन माँझी भटक रही नाव कहाँ ठहरे

सूरज के रथ से लिपटी तम की छाया
चंदन की घाटी में विषधर का साया
बर्फ हुई आग, और आग हुआ पानी
सत्य सब अनित्य हुए, नित्य हुई माया
उथले-उथले हैं विश्वास के सरोवर
संशय की धरती पर कूप बहुत गहरे

◈

हम संतान एक जननी की

हम संतान एक जननी की, मिलकर सुख-दुख सहते हैं
अलग-अलग भाषा, बोली पर बात एक ही कहते हैं
भारत माँ हम सब की माता
इससे जन्म-जन्म का नाता
इतना प्यार मिला इस भू से
हमें स्वर्ग भी नहीं लुभाता
आत्म-पुरुष हम कभी न बँटते कटते गलते दहते हैं
अलग-अलग भाषा बोली

बहुत बड़ा यह अपना घर है
इसे प्राप्त देवों का वर है
किरण, पवन, सब आते-जाते
पर न दरारों का कुछ डर है
इस घर में हिंदू, ईसाई, मुसलमान, सिख रहते हैं
अलग-अलग भाषा बोली

ये मंदिर, मस्जिद, गुरूद्वारे
चर्च, मज़ार, मूर्ति, जलधारे
साँझी संस्कृति के प्रतीक ये
सब के सब हैं पूज्य हमारे
इनको श्रद्धा-सुमन चढ़ा हम शक्ति, शांति, सुख लहते हैं
अलग-अलग भाषा बोली

जब भी शत्रु हमें धमकाते
दुख के काले बादल छाते
तब सब एक सूत्र में बँधकर
हम चट्टानों से टकराते
बैरभाव रखने वाले सब ढेर टूट कर ढहते हैं
अलग-अलग भाषा बोली, पर बात एक ही कहते हैं

◈

मर्त्य हूँ मैं

मैं नहीं अपने लिए कुछ माँगता, पर
दे सको तो दर्द को विश्राम दे दो

मैं न माँगूंगा कभी तुमसे खुशी का एक भी पल
और झेलूंगा तुम्हारे वार सब रहकर अचंचल
जो अमृत पीकर सदा जीते रहे, वे ही अमर हों
मर्त्य हूँ मैं तो पियूँगा जो मिला मुझको हलाहल
नीलकंठ नहीं, न कोई विष-पुरुष मैं
पर मुझे स्वीकार, विषधर नाम दे दो

दुख नियति में है अगर तो क्यों गिला-शिकवा करूँ मैं
वक्त के इस बेरहम व्यवहार से कब तक डरूँ मैं
ज़िंदगी जैसी मिली, वैसी जिया हूँ सिर उठाकर
एक जीने के लिए, सौ बार बोलो क्यों मरूँ मैं
मृत्यु का त्यौहार हो उल्लासमय, जब
गति स्वयं माँगे कि पूर्णविराम दे दो

◈

एक बिंदु को वृत्त मानकर

उस पर साधा तीर किसलिए, जो न कभी था लक्ष्य तुम्हारा
जो न कभी वापिस लौटेगा, उस राही को व्यर्थ पुकारा

साँसों की आँधी से दुख का बादल नहीं छँटा करता है
आँसू की वर्षा से मन का मरुस्थल नहीं घटा करता है
रोना-धोना छोड़ उठो, जीने की पूरी रस्म निभाओ
पीछे हट जाने से पथ का पत्थर कभी हटा करता है
औरों के आश्रित हो जीना, शर्तों पर जीने जैसा है
टूटी नाव, नशे मे माँझी, दे न सकेंगे कभी किनारा

जन्म-मरण का चक्र अदेखा, और अबूझा है परिवर्तन
शायद फिर न मिले यह जीवन, शायद फिर न मिले यह नर-तन
तुम अनुभव तो करो, सृष्टि में बिखरे, सत्यं, शिवं, सुंदरम्
देखो इंद्रधनुष मालाएँ, सुनो तनिक भ्रमरों का गुंजन
एक बिंदु को वृत्त मानकर, खुद को सीमाबद्ध कर लिया
जीवन-ज्यामिति की समग्र रचना को क्यों तुमने न निहारा

◈

विश्वमोहिनी तुम

अधर तुम्हारे रस की गागर, महुआ जैसे नयन नशीले
हृदय-कुंड में अमृत या गरल, यह कैसे जानेगा कोई

मुख अकलंकित चंद्र और मदिरा से मादक अंग तुम्हारे
मधु-सी मीठी वाणी, महफ़िल से आकर्षक ढंग तुम्हारे
नयन-कमल उघरें तो खिल जाए पूरी वसुधा का आनन
मोहक इंद्रधनुष ने चुरा लिए हैं, सारे रंग तुम्हारे
भृकुटि-कमान, नासिका शुक सी, दंतावलि मोती की लड़ियाँ
गुम्फित कुंतल-वेणी, जैसे नागिन कमल नाल पर सोई

उन्नत पुष्ट उरोज, पृथुल तन, कटि-केहरि, नितंब गदराए
ऊरु सबल, पग चपल, झूम कर चल दो तो गजराज लजाए
भृकुटि वक्र तो कंपित याचक, झुकीं पलक तो मौन समर्पण
बोल उठो तो कोयल कूके, हंस दो तो चपला लहराए
ठहरो तो थम जाए जीवन, थिरक उठो तो अग-जग नाचे
ऐसा गौर वर्ण जैसे हो पूनम गंगाजल में धोई

तुम उर्वशी, मेनका, रंभा, इंद्रलोक की रम्य अप्सरा
हो रति का रूपांतरण तुम, शुचि सुंदरता की परंपरा
मोनालिसा सजीव, पद्मिनी, हेलन, वीनस, क्लियोपाट्रा
रूपमती, पद्मावत, विश्वमोहिनी कल्याणी, ऋतंभरा
तुमको पाने को लालायित नर, किन्नर, गंधर्व, देवता
पर तुमने अपने उर में क्या कभी प्रेम की पीर सँजोई

◈

तुमने कभी पुकारा होता

कभी तुम्हारा घर ओझल था, कभी डगर अनजानी थी
कभी भीड़ में सुध-बुध खोई, कभी विरल वीरानी थी
कभी किनारों से टकराया
कभी बीच मझधार चला हूँ
हर दिन साँझ सकारे प्रतिपल
चलते-चलते हार चला हूँ
लगने लगा कि जैसे चलना, पाँवों की नादानी थी
तार-तार काँटों से दामन
कभी दुलारा है फूलों ने
कभी परायों ने भटकाया
और कभी अपनी भूलों ने
शायद तुमको पा लेने की आशा ही बेमानी थी
कभी कल्पना के पंखों से
उड़कर तुम्हें छू लिया मैंने
मन का सारा स्नेह जलाकर
पथ में दीप रख दिया मैंने
फिर भी पूनम की अकुलाहट, मावस की मनमानी थी
मैं मंज़िल पा ही जाता यदि
तुमने कभी पुकारा होता
पथ के सब अवरोध हटाता
यदि संकेत तुम्हारा होता
मेरी प्रीति पुरातन थी पर तुमने कब पहचानी थी

◈

आकुल अनुगूँजें

प्रथम प्रणय के मधुर मिलन में
क्या कुछ खोया था, क्या पाया
विस्मृति की मादक बेला में
जन्म-मृत्यु का भेद भुलाया

ऐसा लगा कि जैसे संसृति
मेरा अपना ही स्वरूप है
अंतर आलोकित अतीत से
आलिंगन में अंधकूप है

बचपन की मासूम अदाएँ
यौवन का बिंदास बहकना
और बुढ़ापे की बेला में
यादों का मुँहजोर महकना

मैं केवल तटस्थ दृष्टा-सा
देख रहा चलचित्रित जीवन
बचपन, यौवन, वृद्धावस्था
सब कुछ झेल चुका है तन-मन

स्मृतियों की आक्रामक लहरें
मानस तट से टकराती हैं
आकुल अनुगूँजें अतीत की
वर्तमान तक आ जाती हैं

तन जो कल था, आज नहीं पर
मन से टूट न पाया नाता
सुधियों के खंडहर में कोई
भव्य-भवन की ज्योति जगाता

वर्तमान से क़दम मिलाकर
साथ चला करता बीता कल
दो पल भी आज़ाद जी सकू.
पास नहीं ऐसा कुछ संबल

आज देखता हूँ मैं जो कुछ
वह कल भी था, कल भी होगा
कल भी वही मिलेगा फल जो
आज भोगता, कल था भोगा

अंतर किया समय ने इतना
अनुभूतियाँ बदल डाली हैं
कल की रंग भरी तस्वीरें
आज लगीं काली-काली हैं

कल किरणें तन सहलाती थीं
सूरज आज जलाता मन को
कल चाँदनी स्निग्ध करती थी
चाँद चिढ़ाता आज नयन को

कल की यादों का निरभ्र-नभ
आज बहुत धुँधला-धुँधला है
इंद्रधनुष वाली सतहों पर
लगता सब कुछ धुला-धुला है

क्या आश्वासन दे भविष्य को
पिंजरे का पक्षी मुझ जैसा
नियति-नटी के रंगमहल में
रोना और कलपना कैसा

◈

सात्विक स्वाभिमान है

दुख से आँख चुराने की तो बात ही कहाँ
दुख ही तो मेरे वजूद का इम्तहान है

सुख स्वयमेव विरक्त रहा मुझ से जीवन भर
उसे रिझाने के मैंने भी यत्न कब किए
दुख ने स्नेह भाव से मुझको गले लगाया
मैंने तन-मन से उसके उपहार सब लिए
कर न सका हूँ सुविधा से सौदा, समझौता
अहं नहीं, यह मेरा सात्विक स्वाभिमान है

तुमने तो पहनाई थी फूलों की माला
तन का ताप लगा तो जलकर क्षार हो गई
साक़ी ने तो प्याले में मय ही ढाली थी
छूकर मेरे अधर, गरल की धार हो गई
मित्रों और शत्रुओं से भी मिली है, मगर
मेरी पीड़ा में मेरा भी अंशदान है

पनघट के रस-परिवेशों से दूर रहा हूँ
मरघट के शोकार्त-पवन से प्यार किया है
जब-जब मुझको लगा कि सावन मेहरबान है
मैंने फागुन में कुल कर्ज़ उतार दिया है
लीकों में तो बैल और कायर चलते हैं
मेरी राहों पर लागू मेरा विधान है

फटे चीथड़ों में पलता भविष्य पीढ़ी का
रेशम में मानव-संस्कृति का शव लिपटा है
मीनारों पर पड़तीं प्रगति-सूर्य की किरणें
झोपड़ियों पर अवसादों की घोर घटा है
माना मुझे तृप्ति ने भी बहकाया जब-तब
पर अभाव के सच का भी तो मुझे ज्ञान है

◈

जिजीविषा

तमाम उम्र लिखी है व्यथा अँधेरों की
न लिख सकूंगा कहानी कृत्रिम सवेरों की

न कोई मील का पत्थर, न रहगुज़र कोई
न कोई नाव न माँझी, न हमसफ़र कोई
कभी भँवर ने पुकारा है, कभी आँधी ने
न कोई दूर तक मंज़िल, न पास घर कोई
जहाँ रुका, वहीं बस्ती मिली लुटेरों की

न मुझ से माँग कि दुनिया को मैं मुहब्बत दूँ
गरल के घूँट भरूँ, औ' हवा को अमृत दूँ
सफेद स्याह हर इक चीज है तराजू पर
असत् के थाल से कैसे तिलक के अक्षत दूँ
जुही की गंध कहाँ देह दे कनेरों की

मेरे विपक्ष में मुद्दे कई-कई उछले
मेरा वजूद मिटाने को चर-अचर मचले
यह बात और है, फिर भी बहुत जिया हूँ मैं
जिजीविषा ने मेरी सब समीकरण बदले
गली न दाल समय-ताल के मछेरों की

◈

मधुऋतु ने बहकाया है

इतनी बार मुझे मधुऋतु ने बहकाया है
लगने लगा कि जीवन पतझर की छाया है

तुम कहते हो हँसूं, खिलखिलाऊँ, मुस्काऊँ
फटे चीथड़ों से मुक्ता, मणि, लाल लुटाऊँ
मैंने जो कुछ बरता, सहा और भोगा है
मानस-पट से कैसे उसका चित्र मिटाऊँ
सावन ने मेरे नयनों को समझाया है
जीवन केवल रुदन, हास्य तो मृगमाया है

वंशी के स्वर अब तो सिर्फ मर्सिया गाते
पनघट मुझको अब तो केवल प्यास पिलाते
चुम्बकीय आकर्षण ऐसे बदल गए हैं
मंडप धकियाते हैं, मरघट पास बुलाते
मुझ से मेरा ही दर्पण अब शरमाया है
मुँह बिसूरती मुझ पर मेरी की काया है

इम्तहान पर इम्तहान होते जाते हैं
धुँधले धरती-आसमान होते जाते हैं
जागी आँखों ने ऐसा कुछ देख लिया है
सारे सपने बेज़ुबान होते जाते हैं
मुझे अटपटे प्रश्नों ने यूँ उलझाया है
उत्तर सही एक भी कभी नहीं पाया है

◈

भोग-स्वीकार

मैं अपने हिस्से के सुख-दुख भोग चुका हूँ
अब इन भोगों पर मेरा अधिकार नहीं है
और दूसरों के हिस्से का एक घूँट भी
अमृत हो या विष, मुझको स्वीकार नहीं है

प्रथम प्रहर ममता के सौ संवाद दे गया
ठुमक-ठुमक कर आँगन का आह्लाद दे गया
प्रहर दूसरा प्यालों का उन्माद दे गया
चढ़ता सूरज जीवन का हर स्वाद दे गया
अब जब अंतिम प्रहर माँगता है कुछ मुझ से
मैं 'ना' कर दूँ, यह तो शिष्टाचार नहीं है

प्यास लगी तो प्यास बुझाते पनघट पाए
पनघट पर घूँघट में रस के दो घट पाए
एक समय इच्छाओं ने अक्षयवर पाए
और कभी अभिलाषाओं ने मरघट पाए
अब जब लाभ-हानि, सुख-दुख सब देख चुका हूँ
कैसे कह दूँ, यह जीवन व्यापार नहीं है

तट से देखी धार, धार में बहती नैया
और जूझते पतवारों से चतुर खिवैया
चल, चलता ही रह जब तक दम में दम भैया
श्रम के आगे पस्त नदी, नद, ताल, तलैया
पर जब तट ने स्वयं धकेला मुझे धार में
मेरी ख़ातिर यह वह कोई पार नहीं है

एक लालसा शेष कि अब कुछ तो कर जाऊँ
बहुत मूल खाया, उसका कुछ ब्याज चुकाऊँ
अपने अर्जित अनुभव दोनों हाथ लुटाऊँ
नए राहगीरों के पथ में दीप जलाऊँ
यही एक उपयोग मुझे लगता इस तन का
वरना अब जीवन में कोई सार नहीं है

◈

क्या किया, क्या न किया

सौ-सौ मौत मरा तब जीवन एक जिया
मत पूछो क्या किया उम्रभर, क्या न किया

पथ पर फूलों के जुलूस को देख रहा
घर में बिखरी घास-फूस को देख रहा
बंद, खुली या कभी अधखुली आँखों से
रोटी पर चढ़ रहे मूस को देख रहा
देख रहा अपनी असमर्थ शिराओं को
आँखें जलती हैं, जुबान गाती रसिया

पनघट से प्यासे ही लौट रहे बरतन
चौपालों पर लोकगीत गाते निर्जन
मंज़िल कितनी दूर किसी को पता नहीं
राहें देख रहीं बूढ़ा होता बचपन
चीलों से आच्छादित पूरा वन-प्रांतर
खोज रही घोंसला साँझ लौटी चिड़िया

आसमान से गिरा खूजरों में अटका
देस पराया, घर का राजकुँअर भटका
गंगाजल के घट में छुपी सुराबाला
सीता के मंदिर में रावण का खटका
सिर खुजलाते, झुँझलाते ही बीता दिन
जाने किस रिश्ते ने ऐसा दंश दिया

शोर बहुत, परिचित कोई आवाज़ नहीं
शहर अजनबी है, कोई हमराज़ नहीं
रेंग रहे केंचुए विष लिए नागों का
ताजमहल में मलिका है, मुमताज़ नहीं
गीत-महल में याद आ रही गाँव-बसी
गोबर थाप रही बाड़े में रामसिया

◈

उत्तर कैसे दूँ मैं

आँखों में असमंजस, अधरों पर अनबन है
उत्तर कैसे दूँ मैं, प्रश्नों में उलझन है
पूछा तुमने मुझसे कैसे यह तन पाया
क्या कह-कहकर मन को, दुख-सुख में भरमाया
कविता के कानन को, कैसे अभिराम किया
क्या हरकत थी जिसने तुमको बदनाम किया
किस तरह निभाई हैं धर्म की विसंगतियाँ
हाथों में रक्त रचा, माथे पर चंदन है

पृथ्वी, आकाश, वरुण, अग्नि, वायु की रचना
यौगिक संघर्षण से, मुश्किल ही था बचना
किसका उपकार रहा, मानुष तन पाने में
कर्म कुछ किए होंगे जाने-अनजाने में
इस तन से चेतन का इतना ही है नाता
सोने के अश्व जुते, माटी का स्यंदन है

सुख शापित आयु लिए दिन दो दिन को आए
दुख के काले बादल बरसों छत पर छाए
फूलों के सौरभ कण, कसक रहे काजल में
शूलों के सौ-सौ व्रण, महक रहे आँचल में
सुख-दुख की गाथाएँ, गूँगों की भाषाएँ
तन पर पसरी मथुरा, मन में वृंदाबन है

अंतर की पीड़ाएँ, रचना बन कर उभरीं
कविताएँ अर्थ-काम मंचों से हैं उतरीं
कचरे के मोल हुई, कविता की नीलामी
प्रेम किया है सब से, फल है बस बदनामी
यह सब जो सजधज है, मरुथल की मृगरज है
बाहर तो भीड़ लगी, भीतर सूनापन है

धर्म अनुष्ठानों के मर्मों को कब जाना
मैंने तो ईश्वर को कर्मों में पहचाना
रण के हर प्रांगण में मेरा ही रक्त बहा
चंदन के हर वन में मैंने ही दंश सहा
रक्त और चंदन से देह सनी है मेरी
शापों-वरदानों का साझा अभिनंदन है

◈

चलो मुड़कर चलें

चलो मुड़कर चलें फिर ज़िंदगी को देखकर आएँ
न जो अब तक समझ पाए, वही सब प्रश्न दुहराएँ
बहुत उन्मुक्त नभ देखे, बहुत तम कूप जंजीरें
बहुत से द्वार देखे हैं, बहुत देखी हैं प्राचीरें
हजारों बार मिलकर भी न जिन चेहरों को पहचाना
चलो अब माँग ले आएँ उन्हीं की चंद तस्वीरें
बहुत कुछ पा लिया है, राह पर चलते हुए हमने
मगर जो खो दिया है अब उसे हम ढूंढ़ कर लाएँ

कभी तो आरती की घंटियों ने खुद बुलाया है
कभी त्यौहार ने मनहूस कह कर दुरदुराया है
कभी सौंदर्य की बरसात ने नहला दिया तन-मन
कभी बदरंग कह कर रंगे-महफ़िल से उठाया है
मिले सम्मान या अपमान जो भी थोक में अब तक
उन्हीं के बीच से खुद को ज़रा-सा देख तो पाएँ

सुराही में समय की तो सुधा भी है, गरल भी है
नदी में पंक, खरपतवार भी हैं, स्वच्छ जल भी है
कहाँ पर क्या मिलेगा कुछ पता चलने नहीं पाता
जहाँ है चाँदनी शीतल, वहीं भीषण अनल भी है
मिले माँगे न कौड़ी, और बिन माँगे मिले मोती
पुरानी रीति है यह अब चलो इसको बदलवाएँ

◈

कहाँ पे आ गए हैं हम

न ज़िंदगी विमुक्त है, न मृत्यु का कसाव है
कहाँ पै आ गए हैं हम, यह कौन सा पड़ाव है
न ठौर है, न ठाँव है, न शहर है, न गाँव है
न धूप है, न छाँव है
यह दृष्टि का दुराव है कि सृष्टि का स्वभाव है
कहाँ पै आ गए हैं हम, यह कौन सा पड़ाव है

न शत्रु है, न मीत है, न हार है, न जीत है
न गद्य है, न गीत है
न प्रीति की प्रतीति है, न द्वेष का दबाव है
कहाँ पै आ गए हैं हम, यह कौन सा पड़ाव है

न हास है, न रोष है, न दिव्यता, न दोष है
न रिक्तता, न कोष है
बुझी हुई समृद्धि है, खिला हुआ अभाव है
कहाँ पै आ गए हैं हम, यह कौन सा पड़ाव है

न भोर है, न रैन है, न दर्द है, न चैन है
न मौन है, न बैन है
यह प्यास का प्रपंच है, कि तृप्ति का तनाव है
कहाँ पै आ गए हैं हम, यह कौन सा पड़ाव है

न दूर है, न संग है, न पूर्ण है, न भंग है
अनंग है, न अंग है
अरूप रूप चित्र का विचित्र रख-रखाव है
कहाँ पै आ गए है हम, यह कौन सा पड़ाव है

न धार है न कूल है, न शूल है, न फूल है
न तथ्य है, न भूल है
असत्य है, न सत्य है, विशिष्ट द्वैतभाव है
कहाँ पै आ गए हैं हम, यह कौन सा पड़ाव है

◈

एक कविता तुम्हारे लिए

एक कविता तुम्हारे लिए
दूर कुछ दिन रहे दोस्तो
क्या बताएँ कि कैसे जिए

मौत घर में घुसी इस तरह
दंग हम देखते रह गए
एक झटके में दो अर्थियां
चोट भारी थी पर सह गए
गीत गाती हुई बाँसुरी
गा उठी दर्द के मर्सिए

घर लगा घूर कर देखने
शून्य में थी घुटन, बेबसी
मैं ठगा-सा खड़ा खोजता
अब न माँ थी, न पत्नी ही थी
कोई आँचल न जब मिल सका
कुछ गिरे अश्रु, कुछ पी लिए

बेबसी, बेकसी, बेखुदी
कोंचने लग गई जब जिया
विस्मरण की शरण खोजता
मैं शहर छोड़कर चल दिया
पर जहाँ भी गया धार थी
दूर थे चैन के हाशिए

हर जगह था अँधेरा घना
बेरहम पीर की आँधियाँ
सर्द आकाश, सूखा पवनचीखती
याद की वादियाँ
एक स्नेहिल छुअन के लिए
कर्म क्या-क्या न मैंने किए

लौट आया यही सोचकर
एक वादा था मैंने किया
गीत को और गीताभ को
शेष सारा समय दे दिया
आप इतना करम कीजिए
प्यार थोड़ा सा दे दीजिए
और जीने को क्या चाहिए
एक कविता तुम्हारे लिए

◈

समाचार

चाकू घर में घुसकर मारा, समाचार है
कैदी गया तोड़ कर कारा, समाचार है
भारत श्रीलंका से हारा, समाचार है
खाने लगा आदमी चारा, समाचार है
इससे आगे क्या सामाजिक सरोकार है—समाचार है

बैंकों में गड़बड़झाला है, समाचार है
फौजी ने डाका डाला है, समाचार है
यमुना नदी बनी नाला है, समाचार है
मानसून आने वाला है, समाचार है
इनमें कोई ख़बर कहो क्या निराधार है—समाचार है

मंत्री एक फ़रार हुआ है, समाचार है
किडनैपिंग व्यापार हुआ है, समाचार है
क़त्ल बीच बाजार हुआ है, समाचार है
कदाचार साकार हुआ है, समाचार है
भारत की जनता तटस्थ है, निर्विकार है—समाचार है

जनपथ पर दो साँड़ लड़े हैं, समाचार है
मंचों पर कुछ भाँड खड़ें हैं, समाचार है
नेताजी बीमार पड़े हैं, समाचार है
दल के भीतर कई धड़े हैं, समाचार है
सिंहासन पर नेताइन निधड़क सवार है—समाचार है

ट्रक के ऊपर ट्रेन चढ़ गई, समाचार है
मँहगाई कुछ और बढ़ गई, समाचार है
रिश्वत नए रिकार्ड गढ़ गई, समाचार है
कालिख हर कानून पढ़ गई, समाचार है
संविधान की सत्ता फिर भी बरकरार है—समाचार है

समलैंगिक संबंध सत्य है, समाचार है
पोर्नोग्राफी सहज तथ्य है, समाचार है
फिल्मों में नग्नता कथ्य है, समाचार है
कुछ रोगों में सुरा पथ्य है, समाचार है
पत्रकार का तीर बुद्धि के आर-पार है—समाचार है।

छोटा द्वार बड़ी है मोरी, समाचार है
पूजाघर से चप्पल चोरी, समाचार है
भरी भीड़ से गायब गोरी, समाचार है
चेन, पर्स झपटे बरजोरी, समाचार है
लगता है हर शख्स सड़क पर झपटमार है—समाचार है

दुनिया में कितने अमीर हैं, समाचार है
भारत में कितने फकीर हैं, समाचर है
कितने अपराधी वज़ीर हैं, समाचार है
आँगन में कितनी लकीर हैं, समाचार है
माँझी मदोन्मत्त है, किश्ती में दरार है—समाचार है

कविता, कथा भी भला कोई समाचार है
कामायनी, कर्बला कोई समाचार है
नाटक, चित्र की कला कोई समाचार है
गायन, नृत्य शृंखला कोई समाचार है
इन आचारों का अभिनंदन बार-बार है—समाचार है

कल न कहीं पर होगा क्रंदन, समाचार है
कल हर कीचड़ होगी चंदन, समाचार है
कल होगा भारत नंबर वन, समाचार है
जन-जन का होगा अभिनंदन, समाचार है
किंतु आज की बदहाली तो दुर्निवार है—समाचार है

◈

पंडित जी

हिंदी ही पढ़ते लिखते हैं पंडित जी
पढ़े-लिखे मूरख दिखते हैं पंडित जी

संस्कृत, हिंदी, उर्दू, पंजाबी, बंगला
भारत की अनेक भाषाओं के ज्ञानी
वेद पुराण उपनिषद रामायण गीता
दर्शन नीति धर्म के ज्ञाता लासानी
क्वींस रोड पर, मैकाले की मंडी में
प्रतिदिन टके सेर बिकते हैं पंडित जी

धोती कुर्ता सदरी टोपी खादी की
पैरों में चप्पल, कर में मोटा डंडा
चार-पाँच पोथियाँ बगल में दाब रहे
माथे पर टीका संस्कारों का झंडा
लोग उन्हें पोंगा पंडित कहते, लेकिन
अपने पथ से कब डिगते हैं पंडित जी

गुड-मौर्निंग सुनकर वे हाथ जोड़ देते
ऐटीकेट आधुनिक नहीं जानते वे
नमस्कार पालागन शुभाशीष कहते
हाय-हलो को हाहाकार मानते वे
आयातित आचारों की मनमानी से
कुढ़ते रिसियाते खिजते हैं पंडित जी

जिनको सिखलाई थी हिंदी की ओलम
वे अधकचरी अँग्रेजी में बतियाते
पहन विदेसी चोला ये देसी साहब
पंडित जी को अब पहचान नहीं पाते
आज़ादी को देख गुलामी की चेरी
तन तपता, मन में सिंकते हैं पंडित जी

पंडित जी कवि कथाकार हैं, लेखक हैं
भारतीयता पर कितने ही ग्रंथ रचे
पर अंग्रेजी चश्मा पहने आँखों को
वे साहित्यिक मूल्यांकन में नहीं जँचे
जब भी पुरस्कार सम्मान बँटा करते
तभी हाशिए पर फिँकते हैं पंडित जी

जिस घर में बेटा विलायती बाबू हो
नौ बरसी पोता बंदूक चलाता हो
आधी रात बहू-बेटी क्लब से लौटें
दीवारों तक को हरि-भजन न भाता हो
यह न पूछना, तन हारे मन को मारे
उस घर में कैसे टिकते हैं पंडित जी

◈

रामसिया

गोबर पाथ रही बाड़े में रामसिया
ऐसा रूप अनूप, स्वयं ज्यों कामप्रिया

बाड़े में थी पूर्ण चंद्र की अनुपम छवि
या कि सूर्य का रूप प्रभामंडल बिखरा
रश्मिलोक-सा उज्ज्वल आनन था जैसे
गंगाजल में धुला हुआ दर्पण निखरा
अलकें लिपट रहीं मुख से कुछ थम-थम कर
पलभर ज्यों बदली ने विधु को ढाँप लिया

वेगवती जब हुई तनिक-सी मलय-पवन
आँचल उर-प्रदेश से उड़- कर लहराया
रक्तिम हुए कपोल, भ्रकुटि कसमसा उठी
गोबर सना हाथ पट छूते सकुचाया,
सिहर उठा कुल गात, क्रोध-मिश्रित लज्जा
नासापुट फड़के, धक-धक कर उठा हिया

देहयष्टि पर छलक रहीं श्रम की बूँदें
अरुण पुष्प पर नृत्यित ज्यों पिघले हिमकण
अवयव थकने लगे, बढ़ी गति साँसों की
उठने-गिरने लगे उरोज पुष्ट क्षण-क्षण
चढ़ती धूप देख चिहुँका चढ़ता यौवन
रवि को देने लगी चुनौती भूमि-तिया

उस अपूर्व मोहक सौंदर्य राशि को मैं
ताक रहा था अपलक पुस्तक ओट लिए
एक दृष्टि ठहरी मुझ पर, कुछ हिले अधर
क्षणभंगुर मुस्कान गा गई सौ रसिए
रोम-रोम रोमांचित होकर सिहर उठा
तन की सीमाओं से बाहर गया जिया

कार्य समाप्त हुआ, श्रम की श्रीदेवी ने
दोनों हाथ उठाकर लीं तब अँगड़ाई
कार्यपूर्ति के सुख से मुख रससिक्त हुआ
रूप-शिखा लहराई, विहँसी तरुणाई
दो पग मेरी और चली कर-द्वय बाँधे
फिर मुड़कर नयनों से कुछ संकेत किया

बीत रहे थे यूँ ही प्रेम-पुलक के दिन
सूर्य उदय होता था, फिर छुप जाता था
मैं दिन के उस एक भाग को जीकर ही
स्नेहामृत घट भर लेता, छलकाता था
कभी स्वप्न में भी न उठी यह आशंका
एक फूँक में बुझ जाएगा स्नेह दिया

एक दिवस मैं प्रहरों रहा प्रतीक्षारत
किंतु न वह आई, न हुआ कोई कंपन
पीली धूप श्वेत होकर कुलबुला उठी
पशु-पक्षी निस्पंद, वियोगी मलय-पवन
नयन नम हुए, तन सहमा, धीरज टूटा
बरबस चीख उठा मन-पपिहा पिया-पिया

अगले दिन उसकी सखि बतलाने आई
उसका आज ब्याह, कल तक वह आई थी
कल भी उसने था तुमको संकेत किया
कल भी उसकी प्रेम दृष्टि लहराई थी
तुम प्रत्युत्तर में कुछ कहते, या करते
तो वह पा जाती मनचाहा ठौर-ठिया

प्रेम-कथा का अंत तो यही होना था
तुम कायर थे, वह लज्जा की मारी थी
कर न सके तुम पुरुषोचित व्यवहार कभी
वह आखिर नारी, भारत की नारी थी
यह उसका संदेश मुझे देना है, तुम
सदा रहोगे रामसिया के मन-बसिया

आज आयु के तीन भाग जीकर भी मैं
गोबर पाथ रहा वह रूप नहीं भूला
रूप-राशि, सौंदर्य साज सब मिले मगर
प्रथम प्रीति-सी पींगें कभी नहीं झूला
तन पर सुख सुविधा का नीर बहुत बरसा
पर सूखी ही रही सदा मन की बगिया

◈

एक पाती

मेरे बीते दिनों, एक पाती है नाम तुम्हारे
भटक रहा निर्जन में एक अभागा मीत पुकारे

रहे एक पथ पर हमराही हम दोनों बरसों तक
एक साथ खेले-कूदे हैं हम परसों-नरसों तक
किश्ती हो या भँवर, धार गहरी हो या उथला जल
कभी न छोड़ा एक दूसरे का लहरों में अंचल
अब ऐसे हैं जैसे नदिया के दो दूर किनारे

तुम्हें याद होगा राधा का मेरे द्वारे आना
मेरी मुरली की मादक धुन पर बल खा लहराना
बस्ती में छुप-छुप कर मिलना, खुलकर वीरानों में
हँस-रो जाना, खो-खो जाना कल्पित अनुमानों में
आज न उसकी छाया तक आती है मेरे द्वारे

तुम ही स्वागत करते थे मेरे सौ-सौ मीतों का
हर पायल में झनका करता स्वर मेरे गीतों का
मेरे अधर चमूने को लालायित थी हर हाला
न्यौछावर हो-हो जाती थी मुझ पर साक़ी बाला
आज पुराना मीत न कोइ मेरी गली गुज़ारे

माँ विद्यादेवी की गोदी में लहराता बचपन
पूज्य पिता दामोदर की छाया में पनपा यौवन
बहिन उर्मिला, विमला, बुआ भगवती, भाभी सीता
कलावती, कौशल्या काकी की रामायण गीता
केशव बाबा की चर्चाएँ सुनता साँझ सकारे

कभी गुज़र जाता हूँ जब अपने घर के आगे से
मुझको अपने नयन लगा करते माँगे-माँगे से
लिपट-लिपट जाता है मेरी चौखट का सूनापन
दबे-दबे स्वर में पुकारता मुझको मेरा आँगन
ओ भटके पथ तू मुझको ले आया यहाँ कहाँ रे

इससे ज्यादा और भोग क्या देंगी भाग्य लकीरें
मिटी जा रही हैं अपने हाथों अपनी तस्वीरें
बहुत हो चुका एक बार अब तो वापिस आ जाओ
बरसों रही दोस्ती का अब कुछ तो धर्म निभाओ
वर्तमान व्याकुल, अतीत के दे दो मीत सहारे

◈

याद आता है जगम्मनपुर

साँस की लय पर हृदय की ताल पर
बज रहे हैं याद के नूपुर बहुत
गाँव, मेरा गाँव, मेरी जन्म-भू
याद आता है जगम्मनपुर बहुत

मैं जहाँ की धूलि में घुटनों चला
खेत, घर, चौपाल पर खेला-पला
प्राण में जिसने बुंदेली आन दी
ज्ञान में दी काव्य की अनुपम कला
दी हृदय में मानवी सम्वेदना
और जीने के दिए हैं गुर बहुत

घर जहाँ पर जन्म मैंने था लिया
और शैशव-काल कुल पूरा किया
बैठके की अधपकी दीवार पर
नाम निज नाखून से था लिख दिया
देखने को फिर वही स्मारक सुखद
छटपटाता है प्रकंपित उर बहुत

घाट वह विश्रांति का, यमुना पुलिन
शुद्ध हो जाता जहाँ हर मन मलिन
पँचनदे में पाँच नदियों का मिलन
साधु-संतों का समागम रात-दिन
संत तुलसी थे जहाँ आए स्वयं
हैं वहाँ सद्धर्म के अंकुर बहुत

कर्णखेरा और राजा का किला
रामबागों का चतुर्दिक सिलसिला
स्कूल पन्ना की हवेली का प्रथम
मैं जहाँ पर आदि-अक्षर से मिला
लाट सुरही की खड़ी बाज़ार में
वक्ष पर अंकित समय के खुर बहुत

कूप गहरे हैं, सुधासम जल जहाँ
धूप तीखी है, पवन शीतल जहाँ
गूँजती हर रात आल्हा की गमक
भोर से हर खेत में हलचल जहाँ
ढोलकों पर लोकगीतों की धुनें
मंदिरों में वंदना के सुर बहुत

देव, मेरा गाँव बहुत महान हो
वर्ष भर घर खेत में धन धान हो
स्वस्थ शिक्षित हों सभी नर नारियाँ
शांति हो, भौतिक प्रगति हो, मान हो
राम मन में, काम हो हर हाथ में
हो सुहागिन भाल पर ईंगुर बहुत

मैं जगम्मनपुर कभी भूला नहीं
रूप उसका खोजता हूँ हर कहीं
याद ने जब-जब हृदय व्याकुल किया
अश्रुधाराएँ उमड़ कर हैं बहीं
चूमने को धूलि अपने गाँव की
प्राण रहते हैं सदा आतुर बहुत
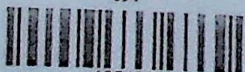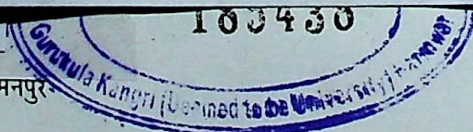
ओमप्रकाश चतुर्वेदी 'पराग'

जन्म : 4 मई, 1933
जन्म स्थान : ग्राम जगम्मनपुर, जालौन (उ.प्र.)
माता : स्व. श्रीमती विद्यादेवी
पिता : स्व. श्री दामोदरदास चतुर्वेदी
शिक्षा : एम.ए., विशारद

सृजन-संसार

स्वरचित कृतियाँ :

गीत-संग्रह : धरती का कर्ज, देहरी दीप, अनकहा ही रह गया, याद आता है जगम्मनपुर

ग़ज़ल-संग्रह : नदी में आग लगी है, फूल के अधरों पे पत्थर, अमावस चाँदनी में

बाल कविता-संग्रह : बड़ा दादा-छोटा दादा, मनपाखी

यात्रा-वृत्तांत : दर्रों का देश लद्दाख

संपादित कृतियाँ :

पद्य-गद्य की सोलह पुस्तकें

साहित्यिक उपलब्धियाँ :

दूरदर्शन तथा आकाशवाणी के अनेक केन्द्रों से रचनाओं का प्रसारण
गीति-काव्य को समर्पित संस्था 'गीताभ' के संस्थापक/अध्यक्ष
कविता के अतिरिक्त कहानी, लेख, व्यंग्य का सृजन

विशेष :

उत्तर प्रदेश शासन में मनोरंजन कर विभाग में उपायुक्त के पद से सेवानिवृत्ति

वर्तमान पता :

विद्या विहार, एस.डी.-181, शास्त्रीनगर, गाजियाबाद
दूरभाष : 0120-2751829, 09312704388

असीम प्रकाशन, गाजियाबाद